४६ गाथा हो गयी। ४७-४८

अब शिष्य पूछता है कि व्यवहारनय किस दृष्टान्त से प्रवृत्त हुआ है ? तुमने जब ऐसा कहा कि निश्चय से तो द्रव्य का आश्रय, वह वस्तु बराबर है, परन्तु पर्याय में राग-द्वेष और मोह है; वह निश्चय से नहीं कहा, परन्तु पर्याय में है—ऐसा इसे जानना चाहिए। यदि पर्याय में राग-द्वेष और मोह न होवे तो उन्हें छेदने का—मोक्ष का उपाय भी न हो। निश्चय में तो मोक्ष का उपाय और बन्ध दोनों नहीं है। अन्तर वस्तुदृष्टि करने पर, वस्तु में तो मोक्ष की पर्याय भी नहीं है, मोक्ष का मार्ग भी नहीं है; बन्ध भी नहीं है, बन्ध का मार्ग भी नहीं है। जब ऐसा कहा, तब फिर तुमने ऐसा कहा, सब एकान्त मानोगे, पर्याय में राग-

द्वेष है तथा शरीर और जीव को निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है—यदि इतना नहीं होवे तो भस्म को मसलने से जैसे शरीर को मसलने से जीव मरे नहीं तो नि:शंकरूप से शरीर को मसल डालना, तो उसमें पाप नहीं—ऐसा सिद्ध होगा; और पाप नहीं तो बन्ध नहीं—ऐसा सिद्ध होगा, अत: बन्ध नहीं तो इसे बन्ध को छेदना—ऐसा यह मोक्ष का उपाय, वह भी व्यवहार है। पर्याय है न? इसलिए व्यवहारनय का विषय इसे बराबर जानना चाहिए। एकान्त करे कि है ही नहीं इसमें, इसलिए पर्याय में भी नहीं, तब तो एकान्त मिथ्यात्व होता है, अवस्तु सिद्ध होता है। वह अवस्तु सिद्ध होता है, वस्तु नहीं। वस्तु तो त्रिकाली द्रव्य के स्वभाव में वह नहीं—एक (बात) और पर्याय में है—दूसरी बात, दोनों होकर प्रमाण और उसका विषय सिद्ध होता है। आहाहा!

इसलिए एकान्त ऐसा कह दो कि आत्मा में नहीं, इसलिए पर्याय में भी राग-द्वेष, पुण्य-पाप नहीं, तथा शरीर को और जीव को निमित्त-निमित्त सम्बन्ध भी नहीं, तब तो व्यवहारनय का निषेध होता है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! वस्तु का स्वभाव जो चैतन्य ज्योति, वह दृष्टि का विषय जो वस्तु है, उसमें तो राग भी नहीं और उसमें तो क्षयोपशम और क्षायिक की पर्याय भी नहीं, परन्तु उसका एकान्त खींचोगे कि उसमें नहीं, इसलिए पर्याय में भी नहीं, तो एकान्त हो जाएगा।

श्रोता : एकान्त हो जाएगा, अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् कहा न? कि वस्तु में नहीं, परन्तु पर्याय में नहीं तो एकान्त हो जाएगा, तो एकान्त सिद्ध होगा-अवस्तु सिद्ध होगा। वस्तु ऐसी है नहीं। वस्तु है, वह द्रव्य और पर्याय - इन दो रूप से मिलकर वस्तु है और तुम द्रव्य को, उसमें नहीं ऐसा अकेला मानो तो अवस्तु सिद्ध होगा। आहाहा! टीका में है और भावार्थ में है 'अवस्तु'। आहाहा! वह तो जैसे ११ वीं गाथा में ऐसा कहा कि '**भूयत्थंमस्सिदौ खलु**' त्रिकाली ज्ञायकभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। आश्रय का अर्थ—उसमें अहंपना 'मैं पना' मेरापना माने, उसे सम्यग्दर्शन होता है, परन्तु फिर १२ वीं गाथा में कहा... किन्तु यह तो निश्चयनय का विषय कहा (परन्तु) अब उसकी पर्याय में कुछ अपूर्णता और शुद्धता का अंश वह है या नहीं? और है तो वह क्या? वह कुछ निश्चय का विषय नहीं।

निश्चय से पर्याय को स्वीकारता (नहीं)। दृष्टि तो पर्याय को ही नहीं स्वीकारती, गुणभेद को भी नहीं स्वीकारती। आहाहा!

पर्याय में है या नहीं? पर्याय में है। राग-द्वेष है और बन्ध को छेदकर मोक्ष का उपाय भी है। उपाय है और बन्ध है—ये दोनों व्यवहारनय का विषय है। ऐसी सूक्ष्म बातें हैं! समझ में आया? इससे इसे पर्याय में राग-द्वेष है—ऐसा इसे जानना चाहिए। आदरणीय की यहाँ बात नहीं है। यह व्यवहारनय आदरणीय है—ऐसा नहीं, परन्तु व्यवहारनय का,.. नय है तो उसका विषय है, नय का विषय (है।) नय है और उसका विषय न हो तो वह नय ही नहीं कहलाता। आहाहा! समझ में आया? तब तो वेदान्त हो जाएगा एकान्त। पर्याय नहीं, पर्याय में पर्याय नहीं, पर्याय में बन्ध नहीं, पर्याय में मोक्ष का उपाय ही नहीं, (तब तो एकान्त हो जाएगा)।

पर्याय को जो अभूतार्थ कहा है, वह तो गौण करके कहा था। उसके बदले तुम (पर्याय) है ही नहीं—ऐसा मान लो तो एकान्त मिथ्यात्व ठहरेगा।

श्रोता : समझना बहुत कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन है बापू! भाई! वस्तु ऐसी है। अधिक स्पष्ट कराते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा! द्रव्य स्वरूप से.... द्रव्य अर्थात्? यह निश्चयनय का द्रव्य; प्रमाण का द्रव्य तो द्रव्य और पर्याय दो मिलकर द्रव्य होता है। परन्तु निश्चयनय का जो द्रव्य, वह अंश है, वह त्रिकाल ध्रुव है। आहाहा! द्रव्य के दो प्रकार—एक निश्चयनय का द्रव्य, वह ध्रुव अंश है, पर्यायरहित; और प्रमाण का विषय है, वह ध्रुव और पर्याय—यह दो होकर द्रव्य, वह प्रमाण का विषय है। आहा! ऐसा सब जानने को कहाँ फुर्सत में बैठे हैं!

श्रोता : सरल कर दो सरल।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा अत्यन्त सादी तो है। भाषा तो सादी है परन्तु भाव तो जो है वह है। आहाहा!

तब शिष्य को प्रश्न उत्पन्न हुआ कि तुमने जब व्यवहार और उसका विषय है—

ऐसा जो कहा तो उसका दृष्टान्त क्या है ? जब तुमने ऐसा कहा कि निश्चय का विषय तो ध्रुव ज्ञायकमूर्ति प्रभु कि जिसमें तो उदयभावरूपी राग तो नहीं, परन्तु जिसमें क्षयोपशम, क्षायिक और उपशम की पर्याय भी जिसमें नहीं। तब फिर यह पर्याय में है, उसका क्या ? कि पर्याय में है—ऐसा इसे जानना चाहिए। पर्याय में राग है, विकार है और उसे छेदने का उपाय भी है। वह उपाय है, वह भी पर्याय है और वह व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया ? तब ये सब-पर्यायों में विकार है, वह विकार छेदा जाए तो मोक्ष का उपाय भी है और मोक्ष भी है। यह सब व्यवहारनय का विषय हुआ। तो शिष्य को प्रश्न उत्पन्न हुआ कि यह **व्यवहारनय किस दृष्टान्त से प्रवृत्त हुआ है ?..** उसका कोई दृष्टान्त है कि हमें शीघ्र समझ में आवे। समझ में आया ? आहाहा!

वह कहते हैं—

राया हु णिग्गदो त्ति य एसो बलसमुदयस्स आदेसो।
ववहारेण दु उच्चदि तत्थेक्को णिग्गदो राया।।४७।।

'**आदेसो**' है न भाई! '**आदेसो**' मस्तिष्क में एक ऐसा उठा कि राजा को कहा न, कि इस समुदाय को, यहाँ तो '**आदेस**' अर्थात् कथन है, परन्तु इतना सम्बन्ध हुआ न ? राजा, सेना को कहा, यह व्यवहार हुआ। सेना में राजा आता नहीं; आहाहा! वैसे ही भगवान आत्मा की पर्याय में द्रव्य आता नहीं, परन्तु पर्याय, पर्यायरूप से है—ऐसा कथन, व्यवहारनय के कथन से कहा है। यह तो कल द्रव्यसंग्रह में देखा, किन्तु हाथ नहीं आया। पुरानी द्रव्यसंग्रह है न, उसमें 'व्यवहार' अर्थात् 'लौकिक कथन'-ऐसा पाठ है। पुरानी द्रव्यसंग्रह है न, पुराना ग्रन्थ है उसमें (पाठ है।) नये में हाथ नहीं आया। दो-तीन देखे; भाई ने—हिम्मतभाई ने, सबने। व्यवहार अर्थात् लौकिक कथन, व्यर्थ। अपने आता है न! 'कलश टीका' में आता है न! पाँचवें कलश में 'व्यवहारनय अर्थात् कथनमात्र'—परन्तु कथन का अर्थ ? वह तो वाचक है, परन्तु उसका वाच्य (क्या) है ? पर्याय में उसका वाच्य है। आहाहा! ऐसी बातें अब! वह यहाँ कहते हैं। दो गाथायें हैं न ?

राया हु णिग्गदो त्ति य एसो बलसमुदयस्स आदेसो।
ववहारेण दु उच्चदि तत्थेक्को णिग्गदो राया।।४७।।

एमेव य ववहारो अज्झवसाणादिअण्णभावाणं।
जीवो त्ति कदो सुत्ते तत्थेक्को णिच्छिदो जीवो।।४८।।

हरिगीत—

'निर्गमन इस नृप का हुआ', - निर्देश सैन्यसमूह में।
व्यवहार से कहलाय यह, पर भूप इसमें एक है॥४७॥

त्यों सर्व अध्यवसान आदिक, अन्य भाव जु जीव है।
-शास्त्रन किया व्यवहार, पर वहां जीव निश्चय एक है॥४८॥

टीका - आज धनतेरस है। आहाहा! मैंने सबेरे यह कहा कि लौकिक में धनतेरस कहते हैं, परन्तु अपने आत्मा में धन तेरस अर्थात् क्या? अर्थात् सर्वज्ञ भगवान अमावस्या को मोक्ष पधारनेवाले हैं न? श्वेताम्बर में ऐसा है कि राजा छठ करके रहे थे, अपने दिगम्बर में नहीं है, इसलिए यह बात एक। परन्तु उसके पहले ऐसा कहे कि इस ज्ञान की पूजा, सर्वज्ञ परमात्मा मोक्ष पधारनेवाले हैं, इससे यह लक्ष्मी—सर्वज्ञस्वरूप भगवान आत्मा की पूजा। सर्वज्ञस्वभावी यह आत्मा, हों! आहाहा! उसकी पूजा का यह दिवस है। आहाहा! भगवान सर्वज्ञस्वरूप लक्ष्मी... लक्ष्मी की पूजा करते हैं न? रतिभाई! यह तुम्हारे सब लक्ष्मी की पूजा करते हैं धनतेरस के दिन। वह कौन सी लक्ष्मी प्रभु? आहाहा! अनन्त-अनन्त सर्वज्ञ 'ज्ञ' स्वभाव, जिसका अनन्त.. अनन्त.. अनन्त..—ऐसा जो सर्वज्ञस्वभाव, उसका स्वीकार करना, आदर करना, उसका बहुमान करना, उसकी पूजा अर्थात् उसमें एकाग्र होना, उसका नाम यहाँ धनतेरस है। यहाँ धूल की धनतेरस नहीं। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं, देखो!

(टीका) **जैसे यह कहना कि यह राजा पाँच योजन के विस्तार में निकल रहा है,..** इतना कहा यहाँ तो। राजा को कहा है कि इतना यहाँ नहीं, परन्तु मात्र ऐसा कहना। क्या कहा समझ में आया? वह सम्बन्ध क्यों व्यवहार कहा? कि राजा को कहा था कि समुदाय है ऐसा परन्तु वह कहीं राजा नहीं कहीं सेना समुदाय.. यहाँ ऐसा कहा कि **पाँच योजन के विस्तार में निकल रहा है,..** वह भी पाँच योजन, पाँच लिये! राजा का समुदाय / सेना पाँच योजन के विस्तार से निकल रही है। आहाहा! ज्ञान के पाँच भेद हैं न? मति,

श्रुत, अवधि इत्यादि, वे भी व्यवहारनय का विषय है; अकेला ज्ञायकस्वरूप त्रिकाल, वह निश्चय का विषय है.. आहाहा! यहाँ कहते हैं कि **राजा पाँच योजन के विस्तार में निकल रहा है,..** ऐसा कहना - ऐसा कहना। **एक राजा का पाँच योजन में फैलना अशक्य है।** राजा एक, दो, पाँच योजन के समुदाय में आ जाये और उसका विस्तार पाना अशक्य है। स्वयं एक राजा पाँच योजन में, सेना में कहाँ जाता है? आहाहा! समझ में आया? **व्यवहारीजनों का सेना समुदाय में राजा कह देने का व्यवहार है..** भाषा कैसी है? व्यवहारीजनों का, व्यवहार कहने का व्यवहार है। आहाहा! **परमार्थ से तो राजा एक ही है,..** आहाहा! **(सेना राजा नहीं है);..** यह तो दृष्टान्त हुआ।

अब यह भगवान आत्मा.. **उसी प्रकार यह जीव समग्र (समस्त) रागग्राम..** भाषा देखो! समग्र राग का समूह, द्वेष का-पुण्य-पाप आदि सब समुदाय, शरीर, वाणी, कर्म, आहाहा! ये सब राग के जो स्थान हैं, आहाहा! उनमें **व्याप्त होकर प्रवृत्त हो रहा है..** भगवान जीवद्रव्यस्वरूप ज्ञायक एकरूप प्रभु इस रागादि के विस्तार में विकार की व्यवस्था की अनेकता में वह जीवद्रव्य व्याप्त है। **ऐसा कहना वह,..** भाषा देखो! यहाँ अकेला राग लिया है, क्योंकि राग अन्त में नष्ट होता है, पहले द्वेष नष्ट होता है, फिर राग नष्ट होता है; इसलिए यहाँ राग की आदि सभी सामग्री—राग, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध, कर्म, शरीर, वाणी, मन पूरा एक ओर भगवान आत्माराम और एक ओर राग का गाँव, आहाहा! रागग्राम, ग्राम अर्थात् समूह-स्थान है। आहाहा! उसमें व्याप्त होकर प्रवर्त रहा है। भगवान आत्मा, चैतन्यध्रुव ज्ञायकस्वभाव परमानन्द की मूर्ति प्रभु जीवद्रव्य उसे कहते हैं, वह जीवद्रव्य ज्ञायकस्वरूप भगवान अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. ज्ञानादि लक्ष्मी का भण्डार भगवान ध्रुव। आहाहा! **एक जीव का समग्र रागग्राम में व्याप्त होना अशक्य है;..** जो द्रव्यस्वभाव है, (उसका) रागादि में व्याप्त होना अशक्य है। आहाहा! समझ में आया?

परन्तु जैसे राजा ने हुक्म किया था, उतना सम्बन्ध समुदाय का है। इसी प्रकार आत्मा में रागादि पर्याय में हैं, इतना वहाँ निमित्त का सम्बन्ध है। शुद्ध उपादान में तो वह वस्तु नहीं। जो त्रिकाली ज्ञायकभाव परमानन्द प्रभु वह राजा / जीव, रागादि में व्याप्त है, उस

समुदाय में, वह तो व्यवहार का कथन है। द्रव्य तो द्रव्य में है। पर्याय में व्याप्त नहीं है। पर्याय में तो उसकी है इतनी अवस्था कहकर व्यवहार से उसे उसका है, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! जिसे ग्यारहवीं गाथा में अभूतार्थ कहा है। पर्यायमात्र असत्यार्थ है। उसे यहाँ सत्यार्थरूप से पर्याय में वर्णन किया है। आहाहा! वह त्रिकाल की अपेक्षा से असत्यार्थ और त्रिकाली उसमें व्यापक नहीं परन्तु उसका एक अंश है, रागादि का समुदाय, उसमें-उसकी दशा में है, वह वस्तु तो वस्तु, वस्तु वहाँ जाती नहीं, आहाहा! परन्तु उसकी दशा में रागादि है, इसलिए ग्राम में व्यापक अशक्य होने से **व्यवहारीजनों का..** आहाहा! **अध्यवसानादिक..** अन्य **भावों में जीव कहने का..** राग-द्वेष-पुण्य-पाप ऐसे जो अन्य भाव, अन्य भाव वे स्वयं अन्य भाव, आहाहा! जिन्हें पुद्गल कहा है, ये दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध को पुद्गल कहा है। जीव चैतन्यस्वभाव से अन्य भाव है। चैतन्यस्वभाव से-चैतन्यस्वभाव-ज्ञायकस्वभाव से अन्यभाव है, इसलिए उन्हें पुद्गल कहा परन्तु यहाँ जीव उनमें व्याप्त हो रहा है, यह व्यवहारनय से कहा है। आहा! उसकी पर्याय है न, इस अपेक्षा से कहा है। द्रव्य की व्यवहार से पर्याय है न? निश्चय से तो द्रव्य में वह पर्याय है ही नहीं। आहाहा!

यह अध्यवसान आठ बोल हैं न, आठ? (गाथा) ४४ में आठ बोल आ गये हैं। अध्यवसान आदि। तीव्र-मन्द भाव, कर्म, आठ कर्मों का समूह - ऐसा कहकर जीव है, ऐसा कहा है। वह तो व्यवहारनय से व्यवहारी लोगों को व्यवहार से बतलाया जाता है, पर्याय में है इसलिए। इसलिए व्यवहार से जानने में आते हुए, व्यवहार में आये हुए को ये मुझे जाननेयोग्य है - ऐसे कहा है। आहाहा!

श्रोता : व्यवहार को जानना, यह तो बहिर्लक्ष्य हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : है; बहिर्लक्ष्य नहीं। पर्याय इसकी है न! त्रिकाल की अपेक्षा से बहिर्लक्ष्य है परन्तु पर्याय इसकी है, इसलिए इसका लक्ष्य है। व्यवहारी कहा न? त्रिकाल द्रव्य की दृष्टि की अपेक्षा से तो बहिर है परन्तु उसकी पर्याय की अपेक्षा से जैसे बाह्य चीज है, वैसे नहीं; इसकी पर्याय में वह है। आहाहा!

श्रोता : अशुद्ध निश्चयनय से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुद्ध निश्चयनय से कहो या व्यवहारनय से कहो, ये दोनों एक ही हैं। आहाहा!

श्रोता : पर्याय में अशुद्धता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह है इसमें, इतना ज्ञान इसे बराबर करना पड़ेगा। वह आत्मा द्रव्यरूप से वहाँ व्यापक नहीं है परन्तु पर्यायरूप से है—ऐसा उसका ज्ञान उसे बराबर जानना चाहिए, आहाहा! ऐसा है।

श्रोता : व्यवहार ज्ञान को हेय जानकर छोड़ देने योग्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह छोड़ देने योग्य है, परन्तु है या नहीं ? है उसे छोड़नेयोग्य होगा या न हो उसे ? कठिन बात है ! वह है अंश में, त्रिकाल में नहीं; इसलिए जीवद्रव्य जो त्रिकाली है, वह सब पर्याय में व्यापक नहीं है, आहाहा! परन्तु उसकी उसके अंश में एक भाग में वह सब वस्तु रही हुई है, इसलिए व्यवहारी जीव का जानना, कहते हैं, पर्याय में है - ऐसा उसे जानना चाहिए। आहाहा!

श्रोता : त्रिकाली द्रव्य में ऐसा कौन सा भाग है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाग है एक अंश! त्रिकाली द्रव्य नहीं, प्रमाण का अंश जो द्रव्य, उसका एक भाग है। वह तो पहले कहा न, प्रमाण का द्रव्य और निश्चय का द्रव्य, ये दोनों अलग चीज है। निश्चयनय का द्रव्य तो ध्रुव है, है तो एक अंश। नय का विषय ही अंश है। चाहे तो निश्चय हो या परमार्थ शुद्ध का विषय, परन्तु है एक अंश, सम्पूर्ण द्रव्य नहीं। नय है न ? आहाहा! ऐसा फिर जानना। प्रमाण जो है, वह पर्याय को भी साथ मिलाकर, यह द्रव्य है—ऐसा जानता है; तथापि प्रमाण भी निश्चय यह है, इसमें नहीं-ऐसा रखकर, पर्याय में है - ऐसे मिलाता है। उसको उड़ा देकर मिलाता है, ऐसा नहीं। भाई! तब तो प्रमाण कहलाता है। निश्चय से द्रव्य तो द्रव्य ही है, वह पर्याय में व्यापक नहीं - आहाहा! ऐसा प्रमाण में एक अंश का भाव तो प्रतीति में है, ज्ञान में है, परन्तु अब पर्याय में वह द्रव्य व्यापक नहीं परन्तु पर्याय है—ऐसे अंश को प्रमाणज्ञान, निश्चय के साथ मिलाकर प्रमाण का द्रव्य सिद्ध करते हैं। ऐसा है प्रभु! क्या हो ? ऐसा मार्ग वीतराग का है कि वह अन्यत्र कहीं नहीं है।

श्रोता : अन्यत्र कहीं नहीं, अकेले सोनगढ़ में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़ में, भगवान के पास है, बापू! वहाँ से यहाँ आया है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि पर्याय के भेदों में अकेला ज्ञान व्यापे, वह वस्तु नहीं, परन्तु वह द्रव्य तो द्रव्यरूप ही वहाँ रहा है। अब साथ में पर्याय को मिलाकर प्रमाण कराते हैं। अरे! अब ऐसी बातें! तत्त्वज्ञान का विषय और फिर पर्याय का अस्तित्व, दोनों सिद्ध करना है। ऐसे ही—पर्याय है ही नहीं - ऐसा मान ले, तब तो एकान्त वेदान्त हो जाता है। वेदान्त निश्चयाभासी है ऐसा हो जायेगा और एकान्त पर्याय ही माने और द्रव्य नहीं माने तो एकान्त बौद्धमती हो जायेगा।

श्रोता : पर्याय को सर्वथा भेदरूप माने तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद है। द्रव्य से सर्वथा भेद है परन्तु है या नहीं उसमें? द्रव्य है, वह सर्वथा नित्य है और पर्याय है, वह सर्वथा अनित्य है, सर्वथा अनित्य है। यह क्या कहा? यह फिर नित्य... वस्तु जो है, वह सर्वथा नित्य है। कथंचित् नित्य है और कथंचित् अनित्य है - ऐसा नहीं है। और पर्याय है वह सर्वथा अनित्य है और कथंचित् अनित्य है - ऐसा नहीं है, सर्वथा अनित्य है। आहाहा! ए..ई.. चमनभाई! और उसमें आया है न? चिद्विलास में, नहीं? अनित्य, नित्य का निर्णय करता है। पर्याय ने ऐसा कहा, वहाँ आता है न, ३२० गाथा में कि 'मैं तो ध्रुव हूँ' परन्तु मैं ध्रुव हूँ, यह जाना किसने? यह पर्याय ने जाना। 'मैं ध्रुव हूँ' - ऐसा जानता कौन है? ध्रुव जानता है? पर्याय जानती है। आहाहा! पर्याय ऐसा कहती है 'मैं त्रिकाली ध्रुव, वह मैं हूँ।' इसका अर्थ दोनों साथ आ गये। ध्रुव मैं हूँ - ऐसा पर्याय ने जाना, इसलिए पर्याय आ गयी, परन्तु पर्याय ऐसा कहती है कि यह मैं हूँ। आहाहा!

श्रोता : पर्याय ऐसा कहती है कि मैं द्रव्य ही हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैं द्रव्य हूँ-इसलिए पर्याय साथ आ गयी। मैं ध्रुव हूँ, उसमें पर्याय मिल नहीं गयी, परन्तु द्रव्य ऐसा नहीं, उसका लक्ष्य वहाँ है। इस कारण भी लक्ष्य जहाँ है, वहाँ पर्याय नहीं परन्तु पर्याय में यह मैं हूँ - ऐसी पर्याय में है वस्तु.. समझ में आता

है ? आहाहा ! ऐसा। वह तो सोगानी में आता है पर्याय मेरा ध्यान करे तो करो मैं किसका ध्यान करूँ ? परन्तु वह जानता कौन है ? आता है ? ये सब तुम्हारी लिखावट है। लालभाई और शशिभाई के, नहीं ?

श्रोता : पर्याय को साथ मिलाये बिना छुटकारा नहीं और पर्याय द्रव्य में नहीं ऐसा भी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें नहीं - वस्तु में नहीं। त्रिकाली जो निश्चय का विषय है उसमें नहीं, और वह नहीं ऐसा निर्णय कौन करता है ? नहीं, वह निर्णय ध्रुव करता है ? समझ में आया ? यह धर्म ऐसा है।

मैं त्रिकाली हूँ - ऐसा सम्यग्दर्शन करना। उस सम्यग्दर्शन का विषय पूर्ण एक ही है, तथापि सम्यग्दर्शन.. उसका निर्णय करती है वह पर्याय है। आहाहा ! ऐसा कहाँ ? अब अन्य तो 'इच्छामि पडिकमणं इरिया वहियाए गमणागमणे तस्सऊतरीकरणेणं हो गयी सामायिक तस्सऊतरी करणेणं' ए...ई... जयन्तीभाई संघवी ! यह सामायिक करके प्रौषध किया, अरे भगवान, बापू ! यह वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव ने कहा द्रव्य और इनने कहा पर्याय, वह कोई अलौकिक बातें हैं। आहाहा ! एकान्त द्रव्य को ही मानें और पर्याय को न मानें तो निश्चयाभासी हो जायेगा और एकान्त पर्याय को माने और द्रव्य को न माने तो व्यवहाराभासी बौद्ध हो जायेगा, क्षणिक मत हो जायेगा। आहाहा ! यह यहाँ कहते हैं, **एक जीव का..** भाषा देखो ! वह एक राजा का समुदाय में व्यापना अशक्य है; वैसे एक जीव द्रव्य का-जो त्रिकाली है उसे, **समग्र (रागग्राम में व्याप्त होना अशक्य है;)..**

भाई ! उस ३८ गाथा में आया है न (शुद्धभाव अधिकार की) पहली गाथा-३८ वीं, नियमसार—'**जीवादिबहित्तच्चं हेय**' इन जीवादिबहित्तच्चं में जीव की पर्याय लेनी है। ३८ वीं गाथा है, शुद्धभाव अधिकार। शुद्धभाव कहो या ध्रुवभाव कहो, एकरूप त्रिकाली भगवान आत्मा, वह शुद्धभाव है। शुद्धभाव कहो, भूतार्थ कहो, ज्ञायक कहो, सदृश कहो, निष्क्रिय कहो, पर्यायरहित है और निष्क्रिय ! आहाहा !

यह '**जीवादिबहित्तच्चं हेय**' यह जीव की एक समय की पर्याय-राग-द्वेष आदि जीवादि वे हेय हैं। त्रिकाली जीवद्रव्य है, वह उपादेय है। जीवादि में पर्याय को वहाँ जीव तो कहा, समझ में आया ?

'**जीवादिबहित्तच्चं**' तो जीवादिबहित्तच्चं जीव द्रव्य वहाँ लेना अब ? एक समय की जीव की पर्याय उसे जीव कहा। अजीव का ज्ञान किया, उसे अजीव कहा। अजीव कहाँ यहाँ आ जाता है ? आहाहा! और यह पुण्य-पाप। पुण्य-पाप और आस्रव आदि की पर्याय, ये सब बहिरतत्त्व हैं। आहाहा! मोक्ष भी बहिरतत्त्व है; अन्तःतत्त्व में तो मोक्षतत्त्व भी नहीं है परन्तु फिर भी मोक्षतत्त्व, तत्त्वरूप से है। आहाहा! समझ में आया ? संवर, निर्जरा, मोक्ष का मार्ग, मार्गरूप से है, पर्यायरूप से है। मोक्षरूप से है। वहाँ तो ऐसा भी कहा कि जीवद्रव्य है, वह मोक्ष को नहीं करता। वह द्रव्य कौन ? वह ध्रुव! मोक्ष के मार्ग को भी द्रव्य / ध्रुव नहीं करता; बन्ध को नहीं करता और बन्ध के अभाव को नहीं करता, वह तो परिणाम करता है, उसका अंश द्रव्य से भिन्न करके वह करे - पर्याय करे तो करो मुझे क्या है ? आहाहा! कहो शशिभाई! यह तुमने लिखा है इसमें.. दो भाईयों ने मिलकर लिखा है। लालभाई और (शशिभाई) ने, इसमें मेहनत अच्छी की है भाई ने। आहाहा!

वहाँ भी ऐसा कहा है कि पर्याय है ही नहीं, इसमें ऐसा कहो तो वेदान्त हो जायेगा; इसलिए पर्याय है, इतना सिद्ध किया है। वहाँ आता है उसमें, वरना वेदान्त हो जायेगा। इसके लिये है, इसमें पर्याय है—इतना सिद्ध किया परन्तु वह पर्याय है, वह वस्तु का-द्रव्य का विषय है, सम्यग्दर्शन का विषय है या द्रव्य है, वह पर्याय में आ जाता है ? (ऐसा नहीं है) सम्यग्दर्शन में त्रिकाली द्रव्य की प्रतीति हुई, परन्तु प्रतीति में वह द्रव्य आ जाता है - ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी बातें!

पर्याय, पर्यायरूप से रहकर द्रव्य की प्रतीति होती है। आहाहा! वह पर्यायरूप से लो तो पर्याय ही सर्वस्व है, क्योंकि पर्याय ने द्रव्य को जाना, गुण को जाना, स्वयं को जाना, छह द्रव्य आदि जो हैं, उन्हें भी जाना। एक समय की पर्याय में क्या बाकी रह गया ? ज्ञान की पर्याय.. तथापि वह पर्याय, द्रव्यरूप नहीं, तथापि वह पर्याय,.. द्रव्य स्वयं द्रव्य वहाँ व्यापक है पर्याय में, ऐसा नहीं है। द्रव्य तो द्रव्य में है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है। आहाहा!

एक जीव का.. जीव अर्थात् वह त्रिकाल ऐसे जीव का, ध्रुव ऐसा '**जीवादिबहित्तच्चं**' है उस जीव का नहीं, वह तो पर्याय का जीव है। **एक जीव का..** जो त्रिकाली एकरूप

रहनेवाला है। आहाहा! ऐसे एक जीव का, **समग्र रागग्राम में..** समस्त राग के समूह के प्रकार, असंख्य प्रकार राग के-शुभ-अशुभ के, उनमें **व्याप्त होना अशक्य है;..** स्वभाव वस्तु है, वह विकार में कैसे व्याप्त हो? अरे, विकार में क्या, निर्विकारी पर्याय में भी ध्रुव कैसे व्याप्त हो? आहाहा! ऐसा है। **(समस्त) रागग्राम में व्याप्त होकर प्रवृत्त हो रहा है..** देखा? द्रव्य स्वयं पर्याय में व्याप्त होकर प्रवर्त रहा है—ऐसा कहना, वह एक जीव का समस्त राग में व्याप्त होना अशक्य है। ध्रुवद्रव्य, जो भगवान चैतन्य परमपारिणामिक -स्वभावभाव, वह पर्याय में आता नहीं। अब ऐसी सब भाषा! कहाँ की भाषा यह सब? सम्प्रदाय में कहीं सुनने को मिले ऐसा नहीं है। यह व्रत करो और तप करो और दया पालो, सामायिक करो और प्रौषध करो... मर गया कर-करके। राग की क्रिया है। रागरहित पूरा कौन है, उस जीवद्रव्य का तो पता नहीं होता। आहाहा!

अशक्य होने से, **व्यवहारीजनों का..** यह व्यवहारी लोगों का **अध्यवसानादिक अन्य भावों में जीव कहनेरूप व्यवहार है,..** आहाहा! तब वह कहता है 'समयसार' अभी बाहर आया है, विद्यानन्दजी हैं न? उन्होंने बनाया है, बनाया है बलभद्र ने, उनने कहा है कि व्यवहार साधक को होता है, निश्चय सिद्ध को होता है। फिर मेरे पास पत्र आया है कि स्वामीजी इसके लिये क्या कहते हैं? यह पुस्तक मैंने बनायी है। यहाँ नहीं न? नहीं। यह रहा यह। और भाई पूनमभाई लाये। ऐसा कि सबने महिमा की है मेरे पुस्तक की, स्थानकवासी ने, तेरापंथी ने, श्वेताम्बर ने और दिगम्बर ने.. परन्तु सबकी दृष्टि ही विपरीत है, वे इसकी महिमा करेंगे। निश्चय तो सिद्ध को होता है, इससे पहले साधक जीव को तो व्यवहार ही होता है। अरे! और उन्होंने दृष्टान्त क्या दिया है? उन जयसेन आचार्य की टीका में आता है न? व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है, उसमें आता है कि श्रावक को शुभभाव आदि और प्रमत्त और अप्रमत्त अवस्था है तब तक.. ऐसा करके.. तब ऐसा कि उसे व्यवहार ही होता है, उसे बस! परन्तु निश्चय स्व के आश्रय बिना पर्याय के भेद का व्यवहार आया कहाँ से? तब निश्चय सिद्ध को होता है... गजब कर डाला और यह विद्यानन्दस्वामी ने उसकी महिमा की, जिनकी सभा में दस-दस हजार लोग, बीस-बीस हजार लोग आते हैं। उसमें धूल में क्या चींटियों के नगर इकट्ठे हों। आहाहा!

यह तो तीन लोक का नाथ जिनेन्द्र परमेश्वर वीतराग की वाणी क्या है, उसका पता नहीं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! एक बार सुन! आहाहा! दूसरे प्रकार से कहें तो जो स्वरूप की दृष्टि हुई है, उसे भी पर्याय में व्यवहार है, वह व्यवहार जाननेयोग्य है। वह व्यवहारी जीव हुआ। क्या कहा? समझ में आया?

व्यवहार पर लक्ष्य हुआ और जाना, इसलिए वह व्यवहारी जीव हुआ। आहाहा! आठवीं गाथा में कहा है न, कि गुरु कहते हैं कि हमने तुझे समझाया कि आत्मा कौन? दर्शन-ज्ञान-चारित्र को '**अततिगच्छति**' प्राप्त हो वह आत्मा है परन्तु हम व्यवहार में विकल्प में आये हैं, इसलिए यह कहा परन्तु वह व्यवहार हमें भी अनुसरण करनेयोग्य नहीं, श्रोता को भी अनुसरण करनेयोग्य नहीं। कहा है न भाई? आहाहा! कहते हैं श्रोता को.. आहाहा! तथापि हमने जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद से 'यह आत्मा है'—ऐसा कहा तो श्रोता को भी उसके भेद पर आश्रय नहीं करना, आहाहा! उसे दृष्टि अभेद पर करना। आहाहा! और श्रोता को भी ३८ वीं गाथा में ऐसा लिया, ३८, अप्रतिबुद्ध-अज्ञानी था। उसे गुरु ने समझाया और वह समझा, पंचम काल का श्रोता, पंचम काल के गुरु ने उसे समझाया, यहाँ यह बात है। केवली ने कहा नहीं, इसमें नहीं लिया, इसमें गुरु ने समझाया है—ऐसा लेने जायें हम तो ऐसा कहते हैं - हम तो जो कहते हैं, वह बात है यहाँ। केवली कहते हैं, वह अभी कहाँ है हमारे पास। परन्तु गुरु ने उसे समझाया कि 'प्रभु! तेरा परमेश्वर पद अलौकिक भिन्न है।' आहाहा! वह पंचम काल का श्रोता फिर ऐसा कहता है आहाहा! 'हम तो दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित हुए हैं, वह आत्मा है।' आहाहा! है न उसमें? भाई! वह श्रोता कहता है, हों! गुरु कहते हैं वह नहीं। गुरु ने तो समझाया इतना ही। श्रोता है, वह पंचम काल का श्रोता, आहाहा! वह अन्दर राग से भिन्न और पर से भिन्न जाना, दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, वह ऐसा कहता है कि मैं तो आत्मा हूँ और जो मैंने आत्मा जाना, वह अब हमारे अप्रतिहत है। पंचम काल का श्रोता ऐसा कहता है। गुरु कहते हैं और केवली कहते हैं, वह तो अलग बात। हमें यह जो भान हुआ है-अनुभव सम्यग्दर्शन-ज्ञान (हुआ है वह) गिरनेवाला नहीं है। भले ही हमें अभी केवली का विरह हो परन्तु हमारे आत्मा का विरह हमें नहीं है। आहाहा! चन्दुभाई! यह किसकी बात चलती है? श्रोता की। ऐसे तो श्रोता लिये हैं। आहाहा! हमारे श्रोता ऐसे होते हैं। आहाहा!

पाँचवीं (गाथा) में कहा न, कि हम विभक्त कहेंगे, वह प्रमाण करना प्रभु, हों! वह प्रमाण अनुभव करके करना - ऐसा कहा। पंचम काल के श्रोता को ऐसा कहा। आहाहा! उसे काल कहाँ बाधक है, वहाँ काल.. आहाहा! प्रमाण करना। ३८वीं में कहा हमने प्रमाण किया। आहाहा! हम आत्मा दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हुए प्रभु! आहाहा! हम ऐसा कहते हैं कि यह हमारा मिथ्यात्व का नाश हुआ, हमें फिर से आनेवाला नहीं है, होनेवाला नहीं है—ऐसी हम पंचम काल के श्रोता भी पुकार करके कहते हैं। चन्दुभाई! आहाहा!

गजब बातें हैं बापू! अरेरे! समयसार अर्थात् क्या चीज भाई! आहाहा! केवलज्ञानी का विरह भुलाया है इसने! इसका एक-एक न्याय और एक-एक भाव, आहाहा! गजब है न! यहाँ वह श्रोता जो है, वह जब ज्ञान समझा है, भान (हुआ है), बाद में उसे रागादि है, वह व्यवहार में आया है, वह जाननेयोग्य है, ऐसा जाने। व्यवहारी अर्थात् यह? भाई! आया था न, आठवीं (गाथा) में आचार्य ने कहा था, भाई! कि हम दो रथ को चलानेवाले-निश्चय-व्यवहार उसमें कहने के लिये हमें विकल्प उठा है, हम व्यवहार में आये हैं, जानते हैं भले, परन्तु आये हैं। आहाहा! तुम्हें समझाते हैं, वह व्यवहार और सुननेवाले भी विकल्प से सुनते हैं, वह भी व्यवहार। आहाहा! ऐसी बातें भाई! बापू! यह तो वीतराग परमात्मा..! आहाहा!

यहाँ से याद आया क्या? कि अन्तरदर्शन निश्चय का हुआ, अब पर्याय में ज्ञान की ओर के लक्ष्यवाला है, वह व्यवहारी जीव है, वह व्यवहारी कहता है कि पर्याय में रागादि है, मैं जानता हूँ। आहाहा! आहाहा!

श्रोता : मेरी पर्याय में है - ऐसा जानता हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय, पर्याय है, उसमें जानता हूँ। वह पर्याय मेरी अर्थात्? वह द्रव्य की नहीं परन्तु पर्याय, पर्याय की है, उसमें वह मेरी है। आहाहा!

धन्य अवतार! आहाहा! ऐसी बातें हैं। प्रभु! ऐसी बातें कहाँ है? आहाहा!

श्रोता : प्रभु का विरह भुलावे ऐसी..

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी चीज है, प्रभु! क्या कहें? **व्यवहारीजनों को..** व्यवहारी

अर्थात् इसमें क्या याद आया? समझ में आया? वह आठवीं में, कि हम विकल्प में व्यवहार में आये हैं। है तो समकिती मुनि, आहाहा! ऐसे यहाँ आत्मा का ज्ञान-स्व का चैतन्यमूर्ति निश्चय का हुआ है परन्तु अब उसे राग का ज्ञान करने के लिये लक्ष्य गया, वह व्यवहारी हुआ। सूक्ष्म पड़े प्रभु! परन्तु यह सुनने जैसा है। बापू! यह वीतराग का मार्ग है भाई! आहाहा! अरे! ऐसे काल में इस मनुष्य देह में यह नहीं समझे, प्रभु तो कब समझेगा, कहाँ जायेगा? आहाहा!

अध्यवसानादिक अन्य भावों में जीव कहने का व्यवहार है,.. रागादि मेरे हैं - ऐसा जानने का व्यवहार है। **परमार्थ से तो जीव एक ही है,..** निश्चय की दृष्टि में तो जो वस्तु आयी है, वह जीव एक ही है। आहाहा! कल बहुत आया था, कल भावार्थ में! भावार्थ में सब अवस्तु और वस्तु,.. पण्डित जयचन्द, पण्डित, पहले के पण्डित भी! आहाहा!

अब शिष्य पूछता है.. आयी अलौकिक गाथा ४९। देखो! यह दिन सब अच्छे आये और गाथा आयी ४९। यह गाथा प्रत्येक शास्त्र में हैं। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, अष्टपाहुड़, धवल इत्यादि में यह गाथा है। कोई ऐसी गाथा है यह, प्रत्येक शास्त्र में जितने सिद्धान्त यह हैं, धवल में तो फिर एक ही जगह परन्तु धवल में भी यह गाथा है और जितने अध्यात्म के (शास्त्र) हैं—यह समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, अष्टपाहुड़ (पंचास्तिकाय) सब में हैं। आहाहा! **अब शिष्य पूछता है कि यह अध्यवसानादि भाव जीव नहीं हैं..** त्रिकाली वस्तु नहीं है **तो एक, टंकोत्कीर्ण,..** आहाहा! ऐसे भेद के प्रकार से रहित ऐसा एक टंकोत्कीर्ण शुद्धरूप, पवित्ररूप, भेदरहित, पर्याय में भंग भेदरहित— ऐसा जो भगवान आत्मा.. आहाहा! शिष्य इतना पूछता है तो इतना सुना इसलिए शिष्य को इतना पूछने का प्रयत्न आया, इतना तो तैयार हुआ। आहाहा! भाई! गये जमूभाई? है? बैठे हैं ठीक.. यह कहीं अपने आप पढ़े तो कुछ समझ में आवे ऐसा नहीं। सब है वह है। हमने मानो पढ़ा और समझ गये हैं। सूक्ष्म बातें बापू! बहुत सूक्ष्म बातें हैं। आहाहा! बहुत परिचय और अभ्यास होवे, तब इसे ख्याल में आवे कि क्या कहना चाहते हैं?

यह शिष्य पूछता है कि रागादिभाव हैं, वे जीव नहीं हैं... यहाँ तो अध्यवसान से लिया था। राग की एकताबुद्धि अध्यवसान-वहाँ से लिया है परन्तु एकताबुद्धि टूट गयी,

फिर भी रागादि रहे हैं, वह जीव का नहीं है तो **एक, टंकोत्कीर्ण, परमार्थस्वरूप जीव कैसा है ?** प्रभु! तब जीव कैसा है ? जीवद्रव्य जीव, हों! आहाहा! वह सम्यग्दर्शन का विषय परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु, जिनबिम्ब, जिनस्वरूप ऐसा जो आत्मा, आहाहा! परमार्थस्वरूप जीव कैसा है ? **उसका लक्षण क्या है ?** उसका लक्षण क्या है ? कि जिससे वह ज्ञात हो ? आहाहा! **इस प्रश्न का उत्तर कहते हैं।** लो, शुरुआत कर देते हैं। अन्दर ऊपर है संस्कृत **यद्येवं तर्हि किं लक्षणोऽसावेकष्टंकोत्कीर्णः परमार्थजीव इति पृष्टः प्राह–** अमृतचन्द्राचार्य स्वयं इस प्रकार शिष्य के मुख में प्रश्न रखते हैं। आहाहा!

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।४९।।

जीव चेतनागुण, शब्द-रस-रूप-गंध-व्यक्तिविहीन है।
निर्दिष्ट नहिं संस्थान उसका, ग्रहण नहिं है लिंग से॥४९॥

इसकी टीका आयेगी। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)